पाँच

भक्तिन को जब मैंने अपने कल्पवास सम्बन्धी निश्चय की सूचना दी तब उसे विश्वास ही न हो सका। प्रतिदिन किस तरह पढ़ने आऊँगी, कैसे लौटूँगी, ताँगेवाला क्या लेगा, मल्लाह कितना माँगेगा आदि आदि प्रश्नों की झड़ी लगा कर उसने मेरी अदूरदर्शिता प्रमाणित करने का प्रयत्न किया।

मेरे संकल्प के विरुद्ध बोलना उसे और अधिक दृढ़ कर देना है इसे भक्तिन जान चुकी है पर जीभ पर उसका वश नहीं। इसीसे अपने प्रश्नों की अजस्र वर्षा में भी मुझे अविचलित देखकर वह मुँह बिचका कर कह उठी, 'कलप वास की उमिर आई तब उहौ हुइ जाई। का एकै दिन सब नेम धरम समापत करै की परतिग्या है?'

यह सब, मैं नियम धर्म के लिए नहीं करती यह भक्तिन को समझाना कठिन है, इसीसे मैं उसे समझाने का निष्फल प्रयत्न करने की अपेक्षा मौन रहकर उसकी भ्रान्ति को स्वीकृति दे देती हूँ। मौन मेरी पराजय का चिन्ह नहीं प्रत्युत् वह जय की सूचना है यह भक्तिन से छिपा नहीं, सम्भवतः इसी

कारण वह मेरे प्रतिवाद से इतना नहीं घबराती जितना मौन से आतंकित होती है, क्योंकि प्रतिवाद के उपरान्त तो मत-परिवर्तन सहज है पर मौन में इसकी कोई सम्भावना शेष नहीं रहती।

अन्त में भक्तिन जैसे मन्त्री की सलाह और सम्मति के विरुद्ध ही, सिरकी, बाँस आदि के गट्ठर समुद्रकूप की सीढ़ियों के निकट एकत्र हो गए और मल्लाह मिलकर विश्वकर्मा का काम करने लगे। बीच में दस फ़ीट लम्बी और उतनी ही चौड़ी साफ़ सुथरी कोठरी बनी और उसके चारो ओर आठ फ़ीट चौड़ा बरामदा बनाया गया। उत्तर वाला बरामदा मेरे पढ़ने लिखने के लिए निश्चित हुआ और दक्षिण में भक्तिन ने अपने चौके का साम्राज्य फैलाया। पश्चिम वाले बरामदे में उसने सत्तू, गुड़ आदि रखने के लिए सींका टाँगा और धोती कथरी आदि टाँगने के लिए अलगनी बाँधी। कोठरी का द्वार जिसमें खुलता था वह अभ्यागतों के लिए बैठकखाना बना दिया गया। इस प्रकार सब बन चुकने पर भक्तिन का टाट और मेरी शीतलपाटी, उसकी धुँधली लालटेन और मेरा पीतल के दीवट में झिलमिलाने वाला दिया, उसकी राँग जैसी बाल्टी और मेरी लपट जैसी चमकती हुई ताँबे की कलशी, उसकी हल्दी, धनिया, आटा, दाल आदि की भौतिकता से भरी मटकियाँ और मेरे न जाने कब के पुरातन तथा सूक्ष्म ज्ञान से आपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ आदि से वह पर्णकुटी एकदम बस गई।

तब भक्तिन का और मेरा कल्पवास आरम्भ हुआ। हमारे आस-पास और भी न जाने कितनी पर्णकुटियाँ थीं पर वे काम चलाऊ भर कही जाँयगी!

किसी समय इस कल्पवास का कितना महत्व रहा होगा इसका अनुमान लगाने के लिए इसका आज का समारोह भी पर्याप्त है। सम्भवतः उस समय देश के विभिन्न खण्डों में रहने वाले व्यक्तियों के मिलन, उनके पारस्परिक

परिचय, विचारों के आदान प्रदान तथा सांस्कृतिक समन्वय का यह महत्त्वपूर्ण साधन रहा होगा। ये नदियाँ इस देश की रक्तवाहिनी शिराओं के समान जीवनदायक रही हैं, इसीसे इनके तट पर इस प्रकार के सम्मेलनों की स्थिति स्वाभाविक और अनिवार्य हो गई हो तो आश्चर्य नहीं। आज इस सम्बन्ध में क्या और क्यों तो हम भूल चुके हैं, पर बिना जाने लीक पीटना धर्म बन गया है।

मुझे इस कल्पवास का मोह है, क्योंकि इस थोड़े समय में जीवन का जितना विस्तृत ज्ञान मुझे प्राप्त हो जाता है उतना किसी अन्य उपाय से सम्भव नहीं। और जीवन के सम्बन्ध में निरन्तर जिज्ञासा मेरे स्वभाव का अंग बन गई है।

गर्मियों में जहाँ तहाँ फेंकी हुई आम की गुठली जब वर्षा में जम आती है तब उसके पास मुझसे अधिक सतर्क माली दूसरा नहीं रहता। घर के किसी कोने में चिड़िया जब घोंसला बना लेती है तब उसे मुझसे अधिक सजग प्रहरी दूसरा नहीं मिल सकता। मेरे चारो ओर न जाने कितने जंगली पेड़, पौधे, पत्ती आदि मेरे सामान्य जीवन-प्रेम के कारण ही पनपते जीते रहते हैं। जिसका दूध लग जाने से आँख फूट जाती है वह थूहर भी मेरे सयत्न लगाये आम के पार्श्व में गर्व से सिर उठाये खड़ा रहता है। धँस कर न निकलने वाले काँटों से जड़ा हुआ भटकटैय्या, सुनहले रेशम के लच्छों में ढके और उजले कोमल मोतियों से जड़े मक्का के भुट्टे के निकट साधिकार आसन जमा लेता है।

न जाने कितनी बार सर्दी में ठिठुरते हुए पिल्लों की टिमटिमाती आँखों के अनुनय ने मुझे उन्हें घर उठा ले आने पर वाध्य किया है। पानी से निकाले हुए जाल में मछलियों की तड़प, पक्षियों के व्यापारी के संकीर्ण पिंजड़े में पंखों की फड़फड़ाहट, लोहे की, काले कटघरे जैसी गाड़ी में बन्दी और हाँफते हुए

कुत्तों की करुण विवशता ने मुझे न जाने कितने विचित्र कामों के लिए प्रेरणा दी है।

ऐसा सनकी व्यक्ति, मनुष्य जीवन के प्रति निर्मोही हो तो आश्चर्य की बात होगी, पर उसकी, सुख-दुख, जीवन-मृत्यु आदि के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानने की इच्छा का सीमातीत हो जाना स्वाभाविक है।

मेरी इस स्वाभाविकता का अस्वाभाविक भार भक्तिन ही को उठाना पड़ता है। घोंसले से गिरे कूड़े कर्कट को फेकने के उपरान्त पवित्र होकर वह सूर्य को अर्घ देने खड़ी हुई कि पिल्ले ने आँगन गंदा कर दिया। उसे भी धोने के उपरान्त फिर स्नान करके वह शिव जी पर जल चढ़ाने चली कि भिखारी को सत्तू-गुड़ देने का आदेश हुआ। वह इस कर्तव्य को भी पूरा करने के उपरान्त नाक बन्द कर जप करने बैठी कि मैं किसी बीमार को देखने जाने के लिए प्रस्तुत हो उसे पुकारने लगी। जीवन की ऐसी अव्यवस्था में भी वह उलाहना देना नहीं जानती। हाँ कभी कभी ओठ सिकोड़ कर गम्भीरता का अभिनय करती हुई वह कह बैठती है 'का ई विद्या का कौनिउ इमथान नाहिन बा? होत तौ हमहूँ बुढ़ौती माँ एक ठौ साटीफिटक पाय जाइत, अउर का!'

अपनी कर्तव्यपरायणता के लिए सर्टीफिकेट न पा सकने पर भी भक्तिन उसका महत्व जानती है। इसी कारण साधारण सी बीमारी में भी चिन्तित हो उठती है 'हम मर जाब तौ इन कर का होई, कउन बनाई खियाई। कउन इनकर ई अजाबघर देखी सुनी।' भक्तिन को मृत्यु की चिन्ता करते करते मेरे अजायबघर की व्यवस्था के लिए, उद्विग्न देख कर किसे हँसी नहीं आवेगी?

धर्म में अखण्ड विश्वास होने के कारण भक्तिन के निकट कल्पवास बहुत महत्वपूर्ण है। पर वह जानती है कि मेरी, 'भानमती का कुनबा' जोड़ने की प्रवृत्ति उसे मोहमाया के बन्धन तोड़ने का अवकाश न देगी। गाँव के मेले से

लेकर कल्पवास तक सब मेरे लिए पाठशाला हैं पर इनमें मैं मोह बढ़ाना ही सीखती हूँ, विराग-साधन नहीं।

संक्रान्ति के एक दिन पहले संध्या समय जब मैं योगदर्शन खोलकर बैठी तब बिरल बदलियाँ बिजली के तार में गुँथ गुँथ कर सघन होने लगीं। भक्तिन ने चूल्हा सुलगाया ही था कि ग्रामीण यात्रियों का एक दल उस ओर के बरामदे के भीतर आ घुसा। मेरे लिए परम अनुगत भक्तिन संसार के लिए कठोर प्रतिद्वन्द्वी है। वह भला इस आकस्मिक चढ़ाई को क्यों क्षमा करने लगी?

आँधी के वेग के साथ जब वह चौके से निकल कर ऐसे अवसरों के लिए सुरक्षित शब्दवाणों का लाघव दिखाने लगी तब तो मेरा शीतलपाटी का सिंहासन भी डोल गया।

उठकर देखा एक वृद्ध के नेतृत्व में बालक, प्रौढ़, स्त्री, पुरुष आदि की सम्मिश्रित भीड़ थी। गठरी, मोटरी, बरतन, हुक्का-चिलम, चटाई, पिटारा, लोटा-डोर सब गृहस्थी लादे फाँदे यह अनिमन्त्रित अभ्यागत मेरे बरामदे में कैसे आ घुसे, यह समझना कठिन था।

मुझे देखकर जब भक्तिन की उग्र मुद्रा में अपराधी की रेखायें उभरने लगीं और उसका कड़कड़ाता स्वर एक हल्की कम्पन में खो गया तब सम्भवतः अभ्यागतों को समझते देर नहीं लगी कि मैं ही उस फूस-सिरकी के प्रासाद की एकछत्र स्वामिनी हूँ।

यूथप वृद्ध ने दो पग आगे बढ़कर परम शान्त पर स्नेहसिक्त स्वर में कहा 'बिटिया रानी का हम परदेसिन का ठहरै न दैहौ? बड़ी दूर से पाँय पियादे चले आइत हैं। ई तौ रैन-बसेरा है—'भोर भये उठि जाना रे' का झूठ कहित है? हम तौ बूढ़-बाढ़ मनई हैं। ऊपर समुन्दर कूप के महराज ठहरै बरे कहत रहे, उहाँ चढ़ै उतरै की साँसत रही। नीचे कौनिउ टपरी माँ

तिल धरै का ठिकाना नाहिंन बा। अब दिया-बाती की बिरिया कहाँ जाई—कसत करी!'

वृद्ध के कण्ठस्वर और उसके कथन की आत्मीयता ने मुझे बलात् आकर्षित कर लिया। भक्तिन की दृष्टि में अस्वीकार के अक्षर पढ़ कर भी मैंने उसे अनदेखा करते हुए कहा—'आप यहीं ठहरें बाबा! मेरे लिए तो यह कोठरी ही काफ़ी है। न होगा तो भक्तिन खाना बाहर बना लिया करेगी। इतना बड़ा बरामदा है, आप सब आ जायँगे। रैन बसेरा तो है ही।'

फिर जब मैं अपनी पुस्तकें और शीतलपाटी लेकर भीतर आ गई तथा दिया जलाकर पढ़ने बैठी तब वे अपने अपने रहने की व्यवस्था करने लगे।

भक्तिन मेरे आराम की चिन्ता के कारण ही दूसरों से झगड़ती है। पर जब उसे विश्वास हो जाता है कि अमुक व्यक्ति या कार्य से मुझे कष्ट पहुँचना सम्भव नहीं तब उसकी सारी प्रतिकूलता न जाने कहाँ ग़ायब हो जाती है। भीड़ से मेरी शान्तिभंग हो सकती है, इस सम्भावना ने उसे जो कठोरता दी थी वह उस सम्भावना के साथ ही विलीन हो गई। वह सत्तू रखने के सींके के नीचे ईंट-पत्थर का चूल्हा बनाकर कम से कम स्थान घेरने की चेष्टा करने लगी जिससे उन आक्रमणकारियों को सुख से बस जाने का अवकाश मिल सके।

उस रात तो मुझे उस नये संसार की व्यवस्था देखने का अवसर न प्राप्त हो सका। दूसरे दिन संक्रान्ति की छुट्टी थी। मुझमें इतनी आधुनिकता नहीं कि स्नान न करूँ और इतनी पुरातनता भी नहीं कि भीड़ के धक्कमधक्के में स्नान का पुण्य लूटने जाऊँ। सो मैं मुँहअँधेरे ही भक्तिन को जगाकर कोहरे के भारी आवरण के नीचे करवट बदल बदल कर अपने अस्तित्व का पता देने वाली गंगा की ओर चली।

जब लौटी तब कोहरे पर सुनहली किरणें ऐसी लग रही थीं जैसे सफ़ेद आबेरवाँ की चादर पर सोने के तारों की हल्की जाली टाँक दी गई हो।

समुद्रकूप की सीढ़ियों के दक्षिण ओर बनी हुई मेरी बड़ी पर कोलाहल-शून्य पर्णकुटी आज पहचानी ही नहीं जाती थी। उसके नीचे बसी हुई अस्थिर सृष्टि को देखकर जान पड़ता था कि किसी प्रशान्त साधक के—किसी असावधान श्वास के साथ इच्छाओं की चंचल भीड़ उसके निरीह हृदय के भीतर घुस पड़ी हो। निकट पहुँच कर मैंने अपनी कुटी की शान्तिभंग करने वालों का अच्छा निरीक्षण परीक्षण किया।

वृद्ध महोदय ने सेनानी के उपयुक्त आडम्बर के साथ मेरे पढ़ने के बरामदे में अधिकार जमा लिया था। फटी और अनिश्चित रंगवाली दरी और मटमैली दुसूती का बिछौना लिपटा हुआ धरा था। उसके पास ही रखी हुई एक मैले फटे कपड़े की गठरी उसका एकाकीपन दूर कर रही थी। लाल चिलम का मुकुट पहने, नारियल का काला हुक्का बाँस के खम्भे से टिका हुआ था। टूल की गोटवाला काला सुरती का बटुआ दीवार से लटक रहा था। खम्भे और दीवार से बँधी डोरी की अरगनी पर एक धोती और रुई भरी काली मिरजई स्वामी के गौरव की घोषणा कर रही थी। निरन्तर तैलस्नान से स्निग्ध लाठी का गाँठगँठीलापन भी चिकना जान पड़ता था। पैताने की ओर यत्न से रखी हुई काठ और निवाड़ से बनी खटपटी कह रही थी कि जूते के अछूतपन और खड़ाऊँ की ग्रामीणता के बीच से मध्यमार्ग निकालने के लिए ही स्वामी ने उसे स्वीकार किया है।

सारांश यह कि मेरे पुस्तकों के समारोह को लज्जित करने के लिए ही मानो बूढ़े बाबा ने इतना आडम्बर फैला रखा था। वे सम्भवतः दतौन के लिए नीम की खोज में गए हुए थे, इसीसे मैंने भेदिये के समान तीव्र दृष्टि से उनकी शक्ति के साधनों की नाप-जोख कर ली।

बरामदे की दूसरी ओर का जमघट कुछ विचित्र सा था। एक सूरदास समाधिस्थ जैसे बैठे थे। उनके मुख के चेचक के दाग, दृष्टि के जाने के मार्ग

की ओर संकेत करते जान पड़ते थे। श्याम और दुर्बल शरीर में कण्ठ की उभरी नसों का तनाव बताता था कि वे अपनी विकलांगता का बदला कण्ठ से चुका लेना चाहते हैं। सिरकी की टट्टी बाँधते समय बाँस का एक कोना कुछ बढ़ कर खूँटी जैसा बन गया था। इसीसे एक चिकारा और एक जोड़ मंजीरा लटक रहा था। सामान में एक चादर, टाट और ऐसी लुटिया भर थी जिसके किनारे घिसते-घिसते टेढ़े-मेढ़े और पैंने हो गए थे।

टाट की सीमा से बाहर वीरासन से विराजमान और तिलक-छाप से पांडित्य की घोषणा करते हुए एक प्रौढ़ एक रंगीन पिटारी खोले हुए थे। रूप-रंग में वह पिटारी शालग्राम या शंकर का बन्दीगृह जान पड़ती थी और सम्भवतः देवता का भार हल्का करने के लिए ही वे उन पर लदे चन्दन घिसने के पत्थर और चन्दन की अधघिसी मुठिया बाहर निकाल रहे थे। रामनामी चादर के एक टुकड़े पर जो पोथीपत्रा धरा था उसमें सबसे ऊपर हनुमान चालीसा का शोभित होना प्रकट कर रहा था कि उनके देवत्व को नित्य भूत प्रेतों की आसुरी माया से लोहा लेना पड़ जाता है।

टाट का एक खूँट दबा कर ठंढी बालू में बैठने का कष्ट भूलने का प्रयत्न करते हुए दो किशोर बालक, अनेक छेदों से चित्रित एक काली कमली में सिकुड़े बैठे थे। उनमें एक की दृष्टि, छप्पर से लटकती हुई सम्भवतः सत्तू गुड़ जैसे मिष्ठान्नों की गठरी को हिप्नोटाइज़ कर रही थी और दूसरा चकित के समान पण्डित के क्रियाकलाप का तत्व समझने में लगा हुआ था।

एक और अधेड़ बाहर बैठकर धूप ले रहा था। एक पुरानी और झीनी चादर ने उसके दुबले शरीर के ढांचे को छिपा रखा था, पर नोकदार कंधों का आभास और भरी नसों वाले सूखे हाथ सच्ची कथा कह देते थे। कीचड़ से भरी हुई बेवाइयों से युक्त पैर कंकालशेष शरीर से पुष्ट जान पड़ते थे। मुख पर झुर्रियों के अक्षरों में भाग्य ने अनाड़ी बालक के समान इतना लिखा था कि अब उसका तात्पर्य पढ़ना कठिन था।

स्त्रियों के डिपार्टमेन्ट की आर्थिक स्थिति भी इससे कुछ अधिक अच्छी नहीं जान पड़ी। बड़ी सी गठरी के सहारे दो वृद्धायें सुमिरनी लिए ठंडी ज़मीन पर बैठी थीं जिनमें एक ऊँघ रही थी और दूसरी अपने आसपास बसी सृष्टि के प्रति अनावश्यक चौकन्नी लगती थी। ऊँघने वाली के पैरों में कसे हुए गोल चिकने कड़े और हाथ में चांदी की एक एक चपटी चूड़ी, उसके मुण्डित मुण्ड के भीतर छिपकर बची हुई शृंगारप्रियता का पता देते थे। दूसरी के गले में बँधे काले डोरे में पिरोये हुए रुद्राक्ष के दो बड़े बड़े मनके स्त्री की आभूषण-परम्परा का पालन मात्र जान पड़ते थे।

एक की आँखें माड़े से धुंधली, नाक ठुड्डी पर झुकी हुई और मुख के भाव में एक करुण उदासीनता थी। पर, कानों को धोती से बाहर निकाले और ओठों को खोलती बन्द करती हुई दूसरी, अपनी छोटी काली आँखों को घुमा कर तथा छोटी नाक के गोल नथनों को फुलाकर मानो चारों ओर बिखरे हुए रूप-रस-गन्ध-शब्द की खोज खबर ले रही थी। निकट ही रखा एक बड़ा काशीफल और उससे टिका हुआ हँसिया दोनों विरागी हृदयों का भोजन के प्रति राग प्रकट कर रहा था और ऊपर छप्पर से बंधी रस्सी की फांसी में झूलती हूई काली घी की हंडिया अपने चमकदार चिकनेपन से उन दोनों के बाह्य रुखेपन का विरोध कर रही थी।

सफ़ेद बूटेदार काली पुरानी धोती पहने हुए, जो अधेड़ स्त्री, कोने में लोटे से खोली हुई डोर की अरगनी बांधने में व्यस्त थी उसे मैं नहीं देख सकी। पर अरगनी पर गुदड़ी बाज़ार लगाने के लिए जो फटे पुराने कपड़े सँभाले खड़ी थी उसने मेरे ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित्त कर लिया। लाल किनारी की मटमैली धोती का नाक तक खींचा हुआ घूंघट ही उसे विशेषता नहीं देता, हाथ की मोटी कच्ची शर्बती रंग की चूड़ियाँ और पांव के कुछ ढीले पतले कड़े तथा दो दो बिछुवे भी उसकी भिन्न सामाजिक स्थिति

का परिचय दे रहे थे। घूंघट से बाहर निकले मुख के अंश की बेडौल चौड़ाई और उसमें व्यक्त सौम्य भाव में कुछ ऐसी खींचखांच थी कि न आँख उसे सुन्दर कहती थी न मन उसे कुरूप मानता था।

उसके एक ओर दो सांवली किशोरियाँ एक बड़े पिटारे में न जाने क्या खोज रही थीं। उनके गोल मुखों पर झूलती हुई उलझी रूखी और मैली लटें मानो दरिद्रता की कथा के अक्षर थीं। दूसरी ओर फटी दरी के टुकड़े पर एक काली कलूटी बालिका फटा और तंग कुरता पहने सो रही थी। उसका बीच बीच में कांप उठना सर्दी और नींद के संघर्ष की तीव्रता बताता था। एक अन्य बालक खम्भे से टिककर बैठा हुआ आंखें मल मल कर रोने की भूमिका बाँध रहा था। कुरते के अभाव में उसे एक पुराने धारीदार अंगौछे का परिधान मिल गया था पर उसका, ऊपर टँगी हंडिया और नीचे रखी गठरी को देख देखकर रोना प्रकट करता था कि भीतर की शीत की मात्रा बाहर की शीत से अधिक होगई है। पूर्व के कोने में पड़े हुए पुआल का गट्ठा और उस पर सिमटी हुई मैली चादर की सिकुड़न कह रही थी कि सोने वालों ने ठंड से गठरी बनकर रात काटी है।

एक श्यामांगिनी युवती बाहर बालू में गड्ढे खोद खोद कर चूल्हे बनाने में लगी थी। कुछ गोलाई लिए हुए लम्बे, रूखे और उभरी हड्डियों वाले मुख पर छोटी नथ हिल हिल कर कभी ओठ कभी कपोल का ऊपरी भाग छू लेती थी। सफ़ेद बूटीदार लाल लँहगे की काली गोट फट कर जहां तहां से उधड़ रही थी। पीली पुरानी ओढ़नी में से व्यक्त शरीर की दुर्बलता को, जल्दी जल्दी बालू निकालने में लगे हुए हाथों का फुर्तीलापन छिपा लेता था।

भक्तिन दो उंगलियाँ ओठ पर स्थापित कर विस्मय के भाव से बड़बड़ाई 'अरे मोर बपई! सगर मेला तौ हियहिं सिकिल आवा है। अब ई अजाब-घर छांडि के दूसर मेला को देखै जाई?'

उस पर एक क्रोधपूर्ण दृष्टि डाल कर मैं अभ्यगतों से सम्भाषण का बहाना सोच ही रही थी कि घूंघट वाली के सहज स्वर ने मुझे चौंका दिया 'पाँ लागी दिदिया ! आपका तौ हम पचै बड़ा कष्ट दिहिन है।' पाँलागन के उत्तर में क्या कहा जाय यह मेरी नागरिक प्रगल्भता भी न बता सकी इसीसे मैं ने 'नहीं कष्ट काहे का—जगह की कमी से आप ही लोगो को तकलीफ हुई' कह कर शिष्टाचार की परम्परा का जैसे पालन किया।

फिर मैं अपनी कोठरी की व्यवस्था में लग गई और भक्तिन मोटे चावल और मूंग की दाल की खिचड़ी मिलाकर और काले तिल के लड्डू लेकर दान-परम्परा की रक्षा करने गई। वहां से लौट कर उसने खिचड़ी चढ़ाई।

खाने के समय भक्तिन को दिक करना मुझे अच्छा लगता है, क्योंकि इसके अतिरिक्त और किसी भी अवसर पर वह मेरी खुशामद नहीं कर सकती। उल्टे दस पांच सुनाने को कमर कसे प्रस्तुत रहती है।

गुड़ में बँधे काले तिल के लड्डू बहुत मीठे होने के कारण मैं नहीं खाती इसीसे भक्तिन मेरे निकट 'मोदकं समर्पयामि' का अनुष्ठान पूरा करने के लिए सफ़ेद तिल धो कूट कर और थोड़ी चीनी मिला कर लड्डू बनालेती है। इस बार कल्पवास की गड़बड़ी में भक्तिन घर के देवता से अधिक महत्व बाहर के देवताओं को दे बैठी। मेले में देवताओं का तीन से तैंतीसकोटि हो जाना स्वाभाविक हो गया, अतः भक्तिन के लिए भी कुछ नहीं बच सका। घर की यह स्थिति भांप कर ही मुझे कौतुक सूझा और मैंने बहुत गम्भीर मुद्रा के साथ कहा 'मेरे लिए लड्डू लाओ'।

किन्तु भक्तिन की उद्विग्नता देखने का सुख मिलने के पहले ही कल का परिचित कण्ठ-स्वर सुन पड़ा 'बिटिया रानी का हमहूँ आय सकित है?' मैं तो छूत पाक मानती ही नहीं और भक्तिन अपनी बटलोई सहित कोयले की मोटी रेखा के भीतर सुरक्षित थी।

'इधर निकल आइए बाबा' सुनकर वृद्ध दोनों हाथों में दो दोने सँभाले हुए सामने आ खड़े हुए। सिर का अग्रभाग खल्वाट होने के कारण चिकना चमकीला था, पर पीछे की ओर कुछ सफ़ेद केशों को देखकर जान पड़ता था कि भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत हो कर वे दूर जा छिपे हैं। छोटी आँखों में विषाद, चिन्तन और ममता का ऐसा सम्मिश्रित भाव था जिसे एक नाम देना सम्भव नहीं। लम्बी नाक के दोनों ओर खिंची हुई गहरी रेखायें दाढ़ी में विलीन हो जाती थीं। ओठों में व्यक्त भावुकता को विरल मूछें छिपा लेती थीं और मुख की असाधारण चौड़ाई को दाढ़ी ने साधारणता दे डाली थी। सघन दाढ़ी में कुछ लम्बे सफ़ेद बालों के बीच में छोटे काले बाल ऐसे लगते थे जैसे चाँदी के तारों में जहाँ तहाँ काले डोरे उलझ कर टूट गए हों। स्फूर्ति के कारण शरीर की दुर्बलता और कुछ झुक कर चलने के कारण लम्बाई पर ध्यान नहीं जाता था। नंगे पाँव और घुटनों तक ऊँची धोती पहने जो मूर्त्ति सामने थी वह साधारण ग्रामीण वृद्ध से अधिक विशेषता नहीं रखती।

बूढ़े बाबा मेरे लिए तिल का लड्डू, घी, आम के अचार की एक फाँक और दही लाये थे। अरुचि के कारण घी-रहित और पथ्य के कारण मिर्च अचार आदि के बिना ही मैं खिचड़ी खाती हूँ, यह अनेक बार कहने पर भी वृद्ध ने माना नहीं और मेरी खिचड़ी पर दानेदार घी और थाली में एक ओर अचार रख दिया। दही का दोना थाली से टिका कर अनुनय के स्वर में कहा—'तनिक सा चीखौ तौ बिटिया रानी! का पढ़े लिखे मनई यहै खाय कै जियत हैं!'

उस दिन से उन अभ्यागतों से मेरे विशेष परिचय का सूत्रपात हुआ जो धीरे धीरे साहचर्य-जनित स्नेह में परिणत होता गया।

मुझे सवेरे नौ बजे झूँसी से इस पार आना पड़ता था और वहाँ से तांगे

में यूनिवर्सिटी। अकेले आना जाना अच्छा न लगने के कारण मैं भक्तिन को भी इस आवागमन का आनन्द उठाने के लिए बाध्य कर देती थी। जब तक मैं लौटने के लिए स्वतन्त्र होती तब तक भक्तिन नारद के समान या तो तांगे वाले की आत्म-कथा सुनकर उसकी भूलों पर निर्णय देती या अन्य परिचितों के यहाँ घूम फिर कर संसार की समस्याओं का समाधान करती रहती।

सबेरे आने की हड़बड़ी में खाने पीने की व्यवस्था ठीक होना कठिन था और लौटने पर जलपान का प्रबन्ध होने में भी कुछ विलम्ब हो ही जाता था। मेरी असुविधा को उन ग्रामीण अतिथियों ने कब और कैसे समझ लिया यह मैं नहीं जानती, पर मेरे पर्णकुटी में पैर रखते ही जलपान के लिए विविध पर सर्वथा नवीन व्यंजन उपस्थित होने लगे।

फूल के बड़े कटोरे में बाजरे का दलिया और दूध, छोटी थाली में सत्तू गुड़ या पुये, रंगीन डलिया में मुरमुरे चने या भुने शकरकन्द आदि के रूप में जो जलपान मिलता था उसे पंचायती कहना चाहिए, क्योंकि सभी व्यक्ति अपने अपने चौके में से मेरे लिए कुछ न कुछ बचा कर सींके पर रख देते थे। एक साथ इतना सब खाने के लिए मुझे जीवन की ममता छोड़नी होगी, यह बार बार समझाने पर भी उनमें से कोई मानता ही नहीं था।

'का दिदिया ई न चखिहैं,' 'बिटिया रानी छुइ भर देतीं तौ हमार जियरा अस सिहाय जात,' 'दिदिया जीभ पै तनिक धर लेतीं तौ ई सब अकारथ न जात' आदि अनुरोधों को सुन कर यह निश्चय करना कठिन हो जाता था कि किसे अस्वीकृति के योग्य समझा जावे। निरुपाय चना-गुड़ से लेकर बाजरे के पुये तक सब प्रकार के ग्रामीण व्यंजनों से मेरी शहराती रुचि का संस्कार होने लगा।

जलपान के समारोह के उपरान्त वे सब सन्ध्या-स्नान, गंगा में दीपदान आदि के लिए तट पर जाते और मैं उत्सुक और जिज्ञासु दर्शक के समान उनका अनुसरण करती।

कल्पवासी एक ही बार खाते और माघ के कड़कड़ाते जाड़े में भी आग न तापने के नियम का पालन करते। इन नियमों के मूल में कुछ तो लकड़ी का मँहगापन और अन्न का अभाव रहता है और कुछ तपस्या की परम्परा।

पर मुझे सर्दी में अलाव जलता हुआ देखना अच्छा लगता है। लकड़ी कन्डों का अभाव तो था ही नहीं। बस पर्णकुटी के बाहर बड़ा सा ढेर लगा कर मैं होली जलाती और अतिथियों की गृहस्थी के साथ आई हुई एक पुरानी मचिया पर बैठकर तापती। उनके बच्चे जो कल्पवास के कठोर नियमों से मुक्त थे और मेरी भक्तिन जिसका कल्पवास परलोक से अधिक इस लोक से सम्बन्ध रखता था आग के निकट बैठकर हाथ पैर सेंकते। सच्चे कल्पवासी अपने और आग के बीच में इतना अन्तर बनाये रखते थे जितने में, पाप-पुण्य का लेखा जोखा रखने वाले चित्रगुप्त महोदय धोखा खा सकें।

इस विचित्र सम्मेलन का कार्यक्रम भी वैसा ही अनोखा था। कोई भजन सुनाता, कोई पौराणिक कथा कहता। कभी किम्बदन्तियों के नये भाष्य होते, कभी लोकचर्चा पर मौखिक टीकायें रची जातीं। कबीर की रहस्यमय उलट-वाँसियों से लेकर, अच्छा बैल ख़रीदने के व्यवहारिक नियम तक सब में उन ग्रामीणों की अच्छी गति थी, इसीसे उनकी संगति न एक-रस जान पड़ती थी न निरर्थक। इस सम्पर्क के कारण ही मैं उनकी जीवन-कथा से भी परिचित होती गई।

बूढ़े ठकुरी बाबा भाटवंश में अवतीर्ण होने के कारण कवि और कवि होने के कारण मेरे सजातीय कहे जा सकते हैं। आधुनिक युग में भाट चारणों के कर्तव्य और आवश्यकता में बहुत अन्तर पड़ चुका है, इसीसे न कोई उनके अस्तित्व को जानता है और न उनके कवित्व-व्यवसाय का मूल्य समझता है। अब तो उनका पैतृक धन्धा व्यक्तिगत मनोविनोद मात्र रह गया है।

समय के प्रवाह को देख कर ही ठकुरी बाबा के पिता ने तुकबन्दी

के लिए मिली हुई प्रतिभा का उपयोग साधारण किसान बनने में किया और अपनी दिवंगता प्रथम पत्नी के दोनों सुयोग्य पुत्रों को भी नीति शास्त्र में पारंगत बनाकर भावुकता के प्रवेश का मार्ग ही बन्द कर दिया।

दूसरी नवोढ़ा पत्नी भी जब परलोकवासिनी हुई तब उसका पुत्र अबोध बालक था पर पिता ने प्रिय पत्नी के प्रति बिशेष स्नेह-प्रदर्शन के लिए उसे साक्षात कौटिल्य बनाने का संकल्प किया। इस शुभ संकल्प की पूर्त्ति के लिए जैसा भगीरथ प्रयत्न किया गया उसे देखते हुए असफलता को दैवी ही कहा जायगा।

सम्भवतः पति की नीतिमत्ता से भाग कर परलोक में शरण पाने वाली मा पुत्र को बचाने के लिए उस पर भावुकता की वर्षा करने लगी हो। हो सकता है कि कौटिल्य ने दूसरे कौटिल्य की सम्भावना से कुपित होकर उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी हो। पर यह सत्य है कि हठी बालक ने अपना पराया तक नहीं सीखा—नीति के अन्य अंगों की तो चर्चा ही क्या। हताश पिता ने इस कठोर शिक्षा का भार बड़े पुत्रों पर छोड़ कर जीवन से अवकाश ग्रहण किया।

सौतेले भाई बड़े और गृहस्थीवाले थे, इसीसे घर द्वार सब उन्हीं के अधिकार में रहा और छोटा भाई चाकरी के बदले में भोजनवस्त्र पाता रहा। उसका कवित्व भाइयों के लिए लाभप्रद ही ठहरा, क्योंकि कोई भी कला सांसरिक और विशेषतः व्यवसायिक बुद्धि को पनपने ही नहीं दे सकती और बिना इस बुद्धि के मनुष्य अपने आपको हानि पहुँचा सकता है दूसरों को नहीं।

जब जात बिरादरी में छोटे भाई को अविवाहित रखने पर टीका टिप्पणी होने लगी तब भाइयों ने उसका एक सुशील बालिका से गठबन्धन कर दिया और, भौजाइयों ने देवरानी को सेवकधर्म की शिक्षा देना आरम्भ किया।

दम्पति सुखी नहीं हो सके यह कहना व्यर्थ है। दासों का एक से दो होना प्रभुओं के लिए अच्छा हो सकता है दासों के लिए नहीं। एक ओर

उससे प्रभुता का विस्तार होता है और दूसरी ओर पराधीनता का प्रसार। स्वामी तो साम दाम दण्ड भेद द्वारा उन्हें परस्पर लड़ा कर दासता को और दृढ़ करते रहते हैं और दास अपनी विवश झुँझलाहट और हीन भावना के कारण एक दूसरे के अभिशापों को विविध बनाकर उससे बाहर आने का मार्ग अवरुद्ध करते रहते हैं।

देवर देवरानी मिलकर यदि गृहस्थी बसा लेते तो सेवा का प्रश्न कठिन हो जाता, इसीसे भौजाइयां नई बहू की चुगली करके उसे पति के निकट अपराधिनी के रूप में उपस्थित करने लगीं। पत्नी की निर्दोषिता के सम्बन्ध में पति का मन विश्वास और अविश्वास के हिंडोले में झोंके खाता था, पर न उसने अपने विश्वास को प्रकट करके बधू को सान्त्वना दी न अविश्वास प्रकट करके अपने मन का समाधान किया।

गर्वीली पत्नी भी अपनी ओर से कुछ न कह कर अविराम परिश्रम द्वारा मन का आक्रोश व्यक्त करने लगी। ठकुरी बेचारे कवि ठहरे। शुष्क यथार्थता उनकी भाव-बोझिल कल्पना के घटाटोप में प्रवेश करने के लिए कोई रन्ध्र ही न पाती थी।

कहीं विरहा गाने का अवसर मिल जाता तो किसी के भी मचान पर बैठकर रात रात भर खेत की रखवाली करते रहते। कोई बारहमासा सुननेवाला रसिक श्रोता मिल जाता तो उसके बैलों का सानीपानी करने में भी हेठी न समझते। कोई आल्हा ऊदल की कथा सुनना चाहता तो मीलों पैदल दौड़े चले जाते। कहीं होली का उत्सव होता तो अपने कबीर सुनाने में भूख प्यास भूल जाते।

अपनी इस काव्य-वाचकता के कारण वे कोई और काम ठीक से न कर पाते थे। नागरिक शिष्ट समाज के समान कोई उन्हें पचास रुपया फ़ीस देकर गलेबाज़ी के लिए नहीं बुलाता था, इसी से अर्थ की दृष्टि से कवि ठाकुरदीन

सुदामा ही रह गए। किसी ने भैली पिछौरी के खूँट में थोड़ा सा तिल गुड़ बांधकर उदारता प्रकट की। किसी ने पथरौटी में सत्तू और पत्ते पर नमक के साथ हरी मिर्च रखकर आतिथ्य सत्कार किया। किसी ने सुलगे हुए कन्डों पर दो भौंरिया सेंकने का अनुरोध करके काव्यमर्मज्ञता का परिचय दिया। इन पुरस्कारों को पाकर ठकुरी प्रसन्न न थे यह कहना मिथ्यावाद होगा। उनकी काव्यजनित अकर्मण्यता भाइयों की उपेक्षा, भौजाइयों के व्यंग और पत्नी की मर्मपीड़ा का कारण थी इसे भी वे नहीं जानते थे।

कुछ वर्षों में पत्नी ने उन्हें एक कन्या का उपहार दिया। पर इसके उपरान्त वह विश्राम और पथ्य के अभाव में प्रसूति ज्वर से पीड़ित हुई तथा उचित चिकित्सा के अभाव में डेढ़ वर्ष की बालिका छोड़कर अपने कठोर जीवन से मुक्ति पा गई। ठकुरी उसी रात आल्हा सुना कर लौटे थे। माता की मृत्यु का उन्हें स्मरण नहीं था, वृद्ध पिता की विदा ने उनके मर्म को छेदा नहीं था। पर यौवन के प्रथम प्रहर में सारे स्नेहबन्धन तोड़ जाने वाली पत्नी ने उनके हृदय को हिला दिया। खारे आँसुओं ने आँखों का गुलाबीपन धोकर उन्हें जीवन-दर्शन के लिए स्वच्छ बनाया। पत्नी को खोकर ही ठकुरी वास्तविक पति और पिता बन सके।

घर में बालिका की उपेक्षा देखकर और उसके परिणाम की कल्पना करके वे अलगौझे पर बाध्य हुए तथा घर की व्यवस्था के लिए अपनी बूढ़ी मौसी को लिवा लाए। पर कन्या की देखरेख वे स्वयं करते थे। आल्हा ऊदल की कथा के प्रेमी पिता की बेला, विनोद के समय उनके कंधे पर चढ़ी हुई घूमती थी और काम के समय पीठ पर बँधी हुई उनके काम की निगरानी करती थी। किसी के हँसने पर ठकुरी कह देते कि जब मज़दूर माँ अपने बच्चे को लेकर काम करती है तब पिता के ऐसा करने में लजाने की कौन बात है! बेला के लिए तो वही बाप हैं और वही माँ।

बालिका जब छै सात वर्ष की हुई तब ठकुरी किसी काव्यप्रेमी सजातीय के सुशील पर मातृपितृहीन भतीजे को ले आये और बेला की सगाई करके भावी जामाता को अपना कामकाज सिखाने लगे। भाग्य सम्भवतः इस देहाती कवि से रुष्ट था, इसीसे शिक्षा समाप्त होते ही भावी जामाता के चेचक निकल आई। वह बच तो गया पर एक आँख के लिए सम्पूर्ण सृष्टि अन्धकार-मय हो गई और दूसरी में इतनी ज्योति शेष रही कि ठोस संसार भाप का बादल सा दिखाई पड़ने लगा।

पिता ने कन्या की इच्छा जाननी चाही पर वह हठ में महोबे की लड़ाई की उस बेला के समान निकली जिसने पिता के बाग में लगे चन्दन की चिता पर ही सती होने का प्रण किया था। बेला ने बचपन के साथी को छोड़ना नहीं चाहा और इस प्रकार ठकुरी बाबा वचन-भंग के पातक से बच गए।

अब कवि ससुर, उसकी बूढ़ी मौसी, अंधा दामाद और रूपसी बेटी एक विचित्र परिवार बनाये बैठे हैं। ससुर ने जामाता को भी काव्य की पर्याप्त शिक्षा दे डाली है। जब ठकुरी चिकारा बजाकर भक्ति के पद गाते हैं तब वह खंजड़ी पर दो उंगलियों से थपकी देकर तान संभालता है, बूढ़ी मौसी तन्म-यता के आवेश में मँजीरा झनकार देती है और भीतर काम करती हुई बेला की गति में एक थिरकन भर जाती है।

घर में एक मुर्रा भैंस, दो पछाहीं गायें और एक हल की खेती होने के कारण जीवनयापन का प्रश्न विशेष समस्या नहीं उत्पन्न करता। यह विचित्र परिवार हर वर्ष माघ मेले के अवसर पर गंगातीर कल्पवास करके पुण्यपर्व मनाता है। इसके साथ गांव के अन्य भक्तगण भी खिंचे चले आते हैं।

ठकुरी बाबा तो सबको अपना अतिथि बनाने को प्रस्तुत रहते हैं। पर कल्पवास में दूसरे का अन्न खाने वाले को विनिमय में अपना पुण्यफल

दे देना पड़ता है, इसीसे वे सब अपनी अपनी गठरी मुटरी में खाने पीने का सामान लेकर घर से निकलते हैं। पर वस्तु से वस्तु का विनिमय वर्ज्य नहीं माना जाता चाहे विनिमय वाली वस्तुओं में कितनी ही असमानता क्यों न हो। आवश्यकता और नियम के बीच में वे सरल ग्रामीण जैसा समझौता करा देते हैं उसे देखकर हँसी आये बिना नहीं रहती। कोई गुड़ की एक डली रखकर ठकुरी बाबा से आध सेर आटा ले जाता है कोई चार मिर्च देकर आलू-शकरकन्द का फलाहार प्राप्त कर लेता है। कोई पत्ते पर तोला भर दही रखकर कटोरा भर चावल नापता हैं। कोई धूप के लिए रत्ती भर घी देकर लुटिया भर दूध चाहता है।

ठकुरी बाबा को देने में एक विशेष प्रकार की आनन्दानुभूति होती है, इसीसे वे स्वयं पूछ पूछकर इस विनिमय व्यापार को शिथिल होने नहीं देते। वे भावुक और विश्वासी जीव हैं। चिकारा हाथ में लेते ही उनके लिए संसार का अर्थ बदल जाता है। उनकी उदारता, सहज सौहार्द, सरल भावुकता आदि गुण ग्रामीण जीवन के लक्षण होने पर भी अब वहाँ सुलभ नहीं रहे। वास्तव में गाँव का जीवन इतना उत्पीड़ित और दुर्वह होता जा रहा है कि उसमें मनुष्यता को विकास के लिए अवकाश मिलना ही कठिन है।

सदा के समान इस वर्ष भी ठकुरी बाबा के दल में विविधता है। भोजन की व्यवस्था के लिए बालू खोदकर चूल्हे बनाती हुई लोक-चिन्ता-रत बेटी, चिकारा मँजीरे और ढफली आदि की पृष्ठभूमि के साथ स्वप्न-दर्शन में अचल जामाता और घी की हंडिया, काशीफल आदि के बीच में बैठकर लोक और परलोक की समस्या सुलझाती हुई मौसी से ठकुरी बाबा का कुटुम्ब बना है। शेष मानो विभिन्न वर्गों और जातियों की सम्मिलित परिषद है।

एक वृद्धा ठकुराइन हैं। पति के जीवनकाल में वे परिवार में रानी की स्थिति रखती थीं, परन्तु विधवा होते ही जिठौतों ने निःसन्तान काकी से मत

देने का अधिकार भी छीन लिया। गांव के नाते वे ठकुरी की बुआ होती थीं, इसीसे पुण्य कमाने के अवसर पर वे उन्हें साथ लाना नहीं भूलते।

दूसरी एक सहुआइन हैं जिनके पति गाँव की तेली-बालिका को लेकर कलकत्ते में कर्तव्यपालन कर रहे हैं। विवाहित जीवन के डबल सर्टीफिकेट के समान दो दो बिछुए पहनकर और नाक तक खिचे घूंघट में वधूवंश की मर्यादा को सुरक्षित रखकर वे परचून की दूकान द्वारा जीवनयापन करती हैं।

हर माघ में वे अपने दो किशोर बालकों के साथ आकर कल्पवास की कठोरता सहती हैं और कमर तक जल में खड़ी होकर भावी जन्मों में साहु जी को पाने का वरदान माँगती हैं। पति ने उनका इहलोक बिगाड़ दिया है पर अब उसके अतिरिक्त किसी और की कामना करके वे परलोक नहीं बिगाड़ना चाहतीं।

तीसरा एक विधुर काछी है। किसी के खेत के टुकड़े में कुछ तरकारी बो कर, किसी की आम की बगिया की रखवाली करके अपना निर्वाह करता है। उसकी घरवाली तीन पुत्रियों की भेंट दे चुकी थी। चौथा पुत्र-उपहार देने के अवसर पर वह संसार के सभी आदान-प्रदानों से छुट्टी पा गई। रात दिन कठोर परिश्रम करके भी उसे प्रायः भूखा सोना पड़ता था। चौथी बार पुत्र जन्म के उपरान्त घर में थोड़ा चावल ही मिल सका। बड़ी लड़की ने उसी का भात चढ़ा दिया। भात यदि माँ खा लेती तो बच्चे भूखे सोते, इसीसे उसने चावल पसा कर माड़ स्वयं पी लिया और भात उनके लिए रख दिया। उसी रात वह सन्निपात-ग्रस्त हुई और तीसरे दिन नवजात पुत्र के साथ ही उसके जीवन की कठिन तपस्या समाप्त हो गई।

पिछले वर्ष काछी आम के पेड़ पर से गिर पड़ा तब से न वह सीधा खड़ा हो सकता है और न कठिन परिश्रम के योग्य है। दोनों किशोरी बालिकायें कभी सहुआइन भौजी के कंडे पाथकर, कभी पंडिताइन का घर लीप कर

कुछ पा जाती हैं, पर छोटी बालिका पिता के गले की फाँसी हो रही है। ठकुरी बाबा के भरोसे ही वह अपनी तीन जीवों की सृष्टि लेकर कल्पवास करने आता है, पर गंगा माई से वह माँगता क्या है इसका अनुमान लगाना कठिन है।

चौथे ब्राह्मण दम्पति हैं। गँवई गाँव की यजमानी वह कामधेनु नहीं है कि पंडित जी महन्ती माँग लेते, पर कहीं कथा बाँचकर और कहीं पुरोहिती करके वे अजीविका का प्रश्न हल कर लेते हैं। विधाता ने जाने कैसा षडयन्त्र रचकर उन्हें पुं नामक नरक से उबारने वाले को अवतार नहीं लेने दिया। पर पंडित जी अपनी स्तुतियों द्वारा गंगा को गदगद करके बेचारे चित्रगुप्त का लेखा-जोखा व्यर्थ कर देना चाहते हैं।

पंडिताइन भी अच्छी हैं। पर सन्तान के लिए इतनी लम्बी प्रतीक्षा ने उनकी आशा के माधुर्य में वैसी ही खटाई उत्पन्न कर दी है जैसी देर से रखे हुए दूध के फट जाने पर स्वाभाविक है।

पति के पूजापाठ का खटराग पंडिताइन को फूटी आँख नहीं सुहाता, इसीसे वह कभी चन्दन का सुटिया नाज में गाड़ देती है कभी सुमिरनी मोखे में छिपा आती है और कभी पोथी-पत्रा अपनी पिटारी में बन्द कर रखती है।

एक ममेरी विधवा बहिन का देहान्त हो जाने पर पंडित, बालक भान्जे को आश्रय देने के लिए बाध्य हो गए। तब से वही महाभारत की द्रौपदी बन गया है। उससे पुत्र का अभाव भरने के स्थान में और अधिक रिक्त होता जा रहा है। अपना होता तो कहना मानता, अपना रक्त होता तो अपनी ममता करता आदि का अर्थ बालक की अबोधता देख कर समझ में नहीं आता। वह बेचारा इन सिद्धान्त वाक्यों को केवल चकित विस्मित भाव से सुनता रहता है, क्योंकि अपने पराये की परिभाषा अभी तक उसने सीखी ही नहीं है। जैसा वह माँ के जीवन काल में था वैसा ही आज भी है। अब अचानक

वह मामी को इतना क्रोधित कैसे कर देता है, यह प्रश्न उसके मन को जब मथ डालता है तब वह फूट फूट कर रो उठता है।

इस विचित्र साम्राज्य के साथ मैंने माघ का महीना भर बिताया, अतः इतने दिनों के संस्मरण कुछ कम नहीं हैं। पर, इनमें एक सन्ध्या मेरे लिए विशेष महत्व रखती है।

मैं अधिक रात गए तक पढ़ती रहती थी, इसी से मेरा वह अतिथि वर्ग भजन-कीर्तन के लिए दूसरे कल्पवासियों की मण्डली में जा बैठता था। एक दिन ठकुरी बाबा ने स्नेह भरी शिष्टता के साथ कहा कि एक बार अपनी कुटी में भी भगत हो तो अच्छा है। मैं कोलाहल से दूर रहती हूँ इसी से भजन-कीर्तन में सम्मिलित होना भी मेरे लिए सहज नहीं होता। पर उस दिन सम्भवतः कुतूहलवश ही मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दिन निश्चित हो गया।

माघी पूर्णिमा के पहले आने वाली त्रयोदशी रही होगी। सबेरे कुछ मेघ-खण्ड आकाश में एकत्र हो गए थे पर सन्ध्या की सुनहली आभा के खर प्रवाह में वे धारा में पड़े नीले कमलों के समान बह कर किसी अज्ञात कूल से जा लगे। सन्ध्या-स्नान और गंगा में दीपदान करके वे सब कुटी के बरामदे में और बाहर बालू पर एकत्र हो गए।

पंडित जी ने पूजा के लिए एक छोटे गमले में मिट्टी भर कर तुलसी रोप दी थी। उसी को बीच में स्थापित करके बालू का एक छोटा सा चबूतरा बनाया गया।

फिर बूढ़ी मौसी के पिटारे में रक्खी हुई द्वारकाधीश की ताम्रमयी छाप, पंडित जी की रंगीन काठ की डिबिया के बन्दी शालग्राम, ठकुराइन बुआ के, चाँदी की जलहरी में विराजमान महादेव जी, ठकुरी बाबा का, पुराने फ्रेम और टूटे शीशे में जड़ा हुआ राम पञ्चायतन का चित्र, सूर

के, हाथ में लड्डू लिए पीतल के बालमुकुन्द, और सहुआइन भौजी के पास पति की स्मृति के रूप में रखे हुए मिट्टी के गणेश सब उसी चबूतरे पर प्रतिष्ठित हो गए। जान पड़ता था भक्तों ने अपने देवताओं को भी सम्मेलन के लिए वाध्य कर दिया है।

बैठने में भी व्यवस्था की कमी नहीं दिखाई दी। खुले बरामदे में मेरे लिए आसन बिछा था। दाहिनी ओर दोनों बूढ़ियाँ और उनसे कुछ हट कर सहुआइन और पंडिताइन बैठी थीं। बाँईं ओर बच्चों की पंक्ति थी जिसे सर्दी से बचाने के लिए सहुआइन ने अपनी दुसूती चादर खोल कर उढ़ा दी थी। देवताओं के सामने पंडित जी पुरानी पोथी खोले विराजमान थे। उनसे कुछ हट कर ठकुरी बाबा चिकारे की खूँटी ऐंठ रहे थे और उनके गीत की हर कड़ी ठीक ठीक सुनने के लिए सट कर बैठा हुआ जामाता गोद में रखी खंजड़ी पर ममता से उँगलियाँ फेर रहा था।

काछी काका इन दोनों से कुछ दूर फटी चादर में सिकुड़े हुए थे। झुकी हुई पीठ के कारण ऐसा जान पड़ता था मानों बालू के कणों में कुछ पढ़ रहे हैं। दस पाँच और ऐसे ही कल्पवासी आ गए थे। धूप लाना, आरती के लिये फूलबत्ती बनाना, घी निकालना आदि काम बेला के जिम्मे थे, अतः वह फिरकनी के समान इधर उधर नाच रही थी।

भक्तों ने 'तुलसा महरानी नमो नमो' गाया और पंडित जी ने पूजा का विधान समाप्त किया। तब ताँबे के पञ्चपात्र और आचमनी से गंगाजल और तुलसीदल बाँटा गया। गंगाजल भक्त मंडली पर छिड़क कर पंडित देवता ने कुछ शुद्ध कुछ अशुद्ध संस्कृत में गंगा के महात्म का पाठ किया। फिर उच्च स्वर से रामायण का वह अवतरण गाया जिसमें श्री राम-जानकी-लक्ष्मण गंगा पार करते हैं। श्रोतागणों में अधिकांश को वह अवतरण कंठस्थ होने के कारण कथावाचक का स्वर अन्य स्वरों की समष्टि में डूब कर अपना बेसुरापन छिपा सका।

तब गौरी गणेश की वन्दना से गीत-सम्मेलन आरम्भ हुआ। यह कहना कठिन होगा कि उनमें कौन सुन्दर गाता था, पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि सभी के गीत तन्मयता के सञ्चार में एक से प्रभविष्णु थे।

कबीर, सूर, तुलसी जैसे महान कवियों से लेकर अज्ञातनामा ग्रामीण तुक्कड़ों तक के पद उन्हें स्मरण थे। एक जो कड़ी गाता था उसे सब का समवेत स्वर दोहरा देता था। दबे पाँव तट तक आकर फिर खिलखिलाती हुई सी लौटने वाली लहरें मानो अविराम ताल दे रही थीं।

गायकों में क्रम था और गीतों में गानेवालों की अवस्था के अनुसार विविधता। सबसे पहले दो बूढ़ियों ने गाया। ठकुरी बाबा की मौसी ने 'सो ठाढ़े दोउ भइया सुरसरि तीर। ऐही पार से लखन पुकारैं केवट लाओ नइया सुरसरि तीर'। गाकर वनवासी राम का जो मार्मिक चित्र उपस्थित किया उसी की प्रतिकृति ठकुराइन की 'दखिन दिसा हेरैं भरत सकारे, आजु अवइया मोरे राम पियारे! दिवस गिनत मोरी पोरैं खियानी, मग जोवत थाके नैन के तारे! आदि पंक्तियों में मिली। साँस भर आने के कारण रुक रुक कर गाये हुए गीत मानो हृदय के रस से भीग कर भारी हो गए थे।

पंडिताइन के 'कहन लागे मोहन मइया मइया' में यदि भाव का विस्तार था तो सहुआइन के 'चले गए गोकुल से बलवीरा चले गए..... बिलखत ग्वाल बिसूरति गौयें तलफत जमुना-नीरा-चले गए।' में अभाव की गहराई। 'सुनाये बिना गुजर न होई' कह कह कर गवाये हुए काछी काका के, 'मन मगन भया तब क्या बोलै' में यदि तन्मयता की सिद्धि थी तो अन्धे युवक के 'सुधि ना बिसरै मोहिं श्याम तुम्हरे दरसन की' में स्मृति की साधना।

ठकुरी बाबा ने खाँस खाँस कर कण्ठ साफ़ करने के उपरान्त आँख मूँद कर गया—

खेलै लागे अँगना में कुँवर कन्हइया हो !
बोलै लागे ' मइया नीकी खोटो बलभइया हो ' !
खटरस भोग उनहिं नहिं भावै रामा
मइया माखन रोटी खवावै लै बलइया हो।
साला दुसाला मनहिं नहिं आवै रामा,
हँसिकै कारी कमरी उढ़ावै उनकर मइया हो !
लैके भौंरा चकई खेलन नहिं जावै रामा,
माँगै ' दै दे लकुटी मैं घेरि लावौं गइया हो ' !

कृष्ण के जीवन में साधारण व्यक्ति को क्यों इतना अपनापन मिलता है, इस प्रश्न का जो उत्तर उस दिन सहज ही मिल गया उसका अन्यत्र मिलना कठिन होगा।

स्वर, रेखायें और रंग भी प्रत्यक्ष कर सकते हैं यह उनकी गीत-लहरी की चित्रमयता से प्रत्यक्ष हो गया।

बूढ़े से बालक तक सबको एक ही स्पन्दन, एक ही पुलक और एक ही भाव बाँधे हुए था।

कितनी देर तक उन्होंने क्या क्या गाया यह बताना सम्भव नहीं, क्योंकि जब अन्तिम आरती ने इस सम्मेलन की समाप्ति की सूचना दी तब मैं मानो नींद से जागी।

थोड़ी देर में सब बरामदे में अपना अपना बिछौना ठीक करके लेट गए, किन्तु मैं अपनी कोठरी में पीतल की दीवट में जलते हुए दिये के सामने बैठ कर कुछ सोचती रह गई।

सहुआइन ने पहले बाहर से झांका फिर एक पैर भीतर रख कर विनीत भाव से जो कहा उसका आशय था कि अब दिये को बिदा कर देना चाहिए। उसकी माँ राह देखती होगी।

हँसी मेरे ओठों तक आकर रुक गई। जब इनके लिए सब कुछ सजीव है तब ये दीपक की मां की और उसकी प्रतीक्षा की कल्पना क्यों न करें! बुझायें देती हूँ कहने पर साहुआइन ने आगे बढ़ कर आँचल की हवा से उसे बुझा दिया। बेचारी को भय था कि मैं शहराती शिष्टाचारहीनता के कारण कहीं फूंक से ही न बुझा बैठूँ।

कितनी देर तक मैं अन्धकार में बैठ कर सोचती रही यह स्मरण नहीं पर जब मैं कुटी के बाहर आकर खड़ी हुई तब रात ढल रही थी। निस्तब्धता से भीगी चाँदनी हल्की सफ़ेद रेशमी चादर की तरह लहरों में सिमटी और बालू में फैली हुई थी।

मेरी पर्णकुटी के दो बरामदे चांदनी से धुल से गए थे—उनमें ठंढी जमीन, चादर, पुआल आदि पर जो सृष्टि सो रही थी उसके वाह्य रूप और हृदय में इतना अन्तर क्यों है, यही मैं बार बार सोच रही थी। उनके हृदय का संस्कार, उनकी स्वाभाविक शिष्टता, उनकी रस-विदग्धता उनकी कर्मठता आदि का क्या इतना कम मूल्य है कि उन्हें जीवन-यापन की साधारण सुविधायें तक दुर्लभ हो जावें।

उन मानव-हृदयों में उमड़ते हुए भाव-समुद्र की जो स्पर्श-मधुर तरंग मुझे छू भर गई थी उसी की स्मृति मेरे मानस-पट पर न जाने कितने विरोधी चित्र आँकने लगी।

कितने ही विराट कवि सम्मेलन, कितनी ही अखिल भारतीय कवि-गोष्ठियाँ मेरी स्मृति की धरोहर हैं। मन ने कहा—खोजो तो उनमें कोई इससे मिलता हुआ चित्र—और बुद्धि प्रयास में थकने लगी।

सजे हाल, ऊँचे मञ्च, मालाविभूषित सभापति मेरी स्मृति में उदय हो आये। उनके इधर उधर देवदूतों के समान विराजमान कविगण रूप और मूल्य दोनों में अपूर्व थे। कोई फर्स्ट क्लास का किराया लेकर थर्ड की शोभा

बढ़ाता हुआ आया था। कोई अपने कार्यवश पहले ही से उस नगर में उपस्थित था, पर थोड़ा समय वहाँ बिताने के लिए इतनी फ़ीस चाहता था या जिसमें आना जाना और आवश्यक कार्य सम्पन्न होने के उपरान्त भी कुछ बच सके। किसी ने अपने काव्य की महार्घता बढ़ाने के लिए ही अपनी गलेबाज़ी का चौगुना मूल्य निश्चित किया था।

मूल्य से जो महत्ता नहीं व्यक्त हो सकी वह वेषभूषा में प्रत्यक्ष थी। किसी के नये सिले सूट की अँगरेज़ियत, ताम्बूलराग की स्वदेशीयता में रञ्जित होकर निखर उठी थी। किसी का चीनांशुक का लहराता हुआ भारतीय परिधान सिगरेट की धूमलेखाओं में उलझ कर रहस्यमय हो रहा था। किसी के सिर के खड़े बाल अमामी से संगमूसा के चमकीले फर्श की भ्रान्ति उत्पन्न करते थे। किसी की सिल्की शैम्पू से धुली सीधी लटों का कृत्रिम कुञ्चन विधाता पर मनुष्य की विजय की घोषणा करता था।

कुछ प्राचीनतावादियों की कभी निर्निमेष खुली आँखें और कभी मीलित पलकें प्रकट करती थीं कि काव्य-रस में विश्वास न होने के कारण उन्हें विजया से सहायता माँगनी पड़ी है।

इन आश्चर्य-पुत्रों के सामने श्रोतागणों की जो समष्टि थी वह मानों उनके चमत्कारवाद की परीक्षा लेने के लिए ही एकत्र हुई थी।

कचहरी में गवाहों की पुकार के समान नामों की पुकार होती थी। कवियों में कोई मुस्कराता, कोई लजाता, कोई आत्म-विश्वास से छाती फुलाता हुआ आगे आता। कोई पंचम, कोई षड़ज, कोई गान्धार और कोई सब स्वरों के अभाव में एक सानुनासिकता के साथ कलाबाज़ियों में काव्य को उलझा उलझा कर श्रोताओं के सामने उपस्थित करता और 'वाह वाह' के लिए सब ओर गर्दन घुमाता।

उनके इतने करतब पर भी दर्शक चमत्कृत होना नहीं जानते थे। कहीं

से आवाज़ आती—कण्ठ अच्छा नहीं है। कोई बोल उठता—भाव भी बताते जाइए। किसी ओर से सुनाई पड़ता—बैठ जाइए। कोई धृष्ट श्रोता कवि से किसी उच्छृंखल शृंगारमयी रचना को सुनाने की फ़रमाइश करके महिलाओं की पलकों का झुकना देखता।

कवि भी हार न मानने की शपथ लेकर बैठते हैं। 'वह नहीं सुनना चाहते तो इसे सुनिये।' 'यह मेरी नवीनतम कृति है ध्यान से सुनिये', आदि आदि कह कर वे पंडों की तरह पीछे पड़ जाते हैं। दोनों ओर से कोई भी न अपनी हार स्वीकार करने को प्रस्तुत होता है और न दूसरे को हराने का निश्चय बदलना चाहता है।

कभी कभी आठ आठ घंटे तक यह कवायद चलती रहती है पर इतने दीर्घ समय में ऐसे कुछ क्षण भी निकालना कठिन होगा जिसमें कवि का भाव श्रोता में अपनी प्रतिध्वनि जगा सका हो और दोनों पक्ष, बाजीगर और तमाशबीन का स्वांग छोड़ कर काव्यानन्द में एकत्व प्राप्त कर सके हों। कवि कहेगा ही क्या, यदि उसकी इकाई सब की इकाई बन कर अनेकता नहीं पा सकी और श्रोता सुनेंगे ही क्या, यदि उन सब की विभिन्नतायें कवि में एक नहीं हो सकीं।

जब यह समारोह समाप्त हो जाता है तब सुननेवाले निराश और सुनाने वाले थके हुए से लौटते हैं। उन पर काव्य का सात्विक प्रभाव कितना कम रहता है इसे समझने के लिए उन सम्मेलनों का स्मरण पर्याप्त होगा जिनसे लौटनेवालों में कतिपय व्यक्ति संगीत-व्यवसायिनियों के गान से मन बहलाने में नहीं हिचकते।

भाव यदि मनुष्य की क्षुद्रता, दुर्भावना और विकृतियाँ नहीं बहा पाता तब वह उसकी दुर्बलता बन जाता है। इसी से स्नेह करुणा आदि के भाव

हृदय की शक्ति बन सकते हैं और द्वेष, क्रोध आदि के दुर्भाव उसे और अधिक दुर्बल स्थिति में छोड़ जाते हैं।

ग्रामीण समाज अपने रस-समुद्र में व्यक्तिगत भेदबुद्धि और दुर्बलतायें सहज ही डुबा देता है इसीसे इस भावस्नान के उपरान्त वह अधिक स्वस्थ रूप प्राप्त कर सकता है।

हमारे सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानन्द छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरञ्जन मात्र रहता है, इसीसे उसमें सम्मिलित होनेवालों की भेदबुद्धि, एक दूसरे को नीचा दिखलाने के प्रयत्न और वैयक्तिक विषमतायें और अधिक विस्तार पा लेती हैं। एक वह हिंडोला है जिसमें ऊँचाई नीचाई का स्पर्श भी एक आत्मविस्मृति में विश्राम देता है। दूसरा वह दंगल का मैदान है जिसका सम धरातल भी हार-जीत के दाँव-पेंचों के कारण सतर्कता की श्रान्ति उत्पन्न करता है।

अपने इन सम्मेलनों की व्यर्थता का मुझे ज्ञान था पर उसमें छिपी कदर्थना की अनुभूति उसी दिन सुलभ हो सकी। इसके कुछ वर्षों के उपरान्त तो वह स्थिति इतनी दुर्वह हो उठी कि मुझे शिष्ट सम्मेलनों से विदा ही लेनी पड़ी।

ख्याति के मध्याह्न में कवि के लिए, अपने प्रशंसकों और अपने बीच में ऐसा दुर्भेद्य परदा डाल लेना सहज नहीं होता। उस सरल जीवन की सात्विकता ने यदि दूसरे पक्ष की कृत्रिमता, इतनी कठिन रेखाओं में न आँक दी होती तो मेरा विद्रोह इतना तीव्र न हो पाता। विशेषतः ऐसा करना तब और भी कठिन हो जाता है जब आडम्बर के साथ अर्थ भी उपस्थित हो, क्योंकि अर्थ ही इस युग का देवता है।

कवि अपनी श्रोता मण्डली में किन गुणों को अनिवार्य समझता है यह प्रश्न आज नहीं उठता पर अर्थ की किस सीमा पर वह अपने सिद्धान्तों का

बोझ फेंक कर नाच उठेगा इसका उत्तर सब जानते हैं। उसकी इच्छा अर्थ के क्षेत्र में जितनी मुक्त है वह श्रोताओं की इच्छा का उतना ही अधिक बन्दी है।

जिस दरिद्र समाज ने इस व्यावसायिक आस्था के सम्बन्ध में मुझे नास्तिक बना दिया उसे अब तक मेरी ओर से धन्यवाद भी नहीं मिल सका।

जब ठकुरी बाबा और उनके साथी वसन्तपंचमी का स्नान करके चले गए तब जीवन में पहली बार मुझे कोलाहल का अभाव अखरा। तब से अनेक माघ-मेलों में मैंने उन्हें देखा है। कितनी ही बार नाव पर या तट पर उनकी भगत का आयोजन हुआ, कितनी ही बार उन्होंने खिचड़ी, बाजरे के पुये आदि व्यंजनों से मेरा सत्कार किया, और कितनी ही बार अपने जीवन का आख्यान सुनाया।

मैंने उनसे अधिक सहृदय व्यक्ति कम देखे हैं। यदि यह वृद्ध यहाँ न होकर हमारे बीच में होता तो कैसा होता, यह प्रश्न भी मेरे मन में अनेक बार उठ चुका है। पर जीवन के अध्ययन ने मुझे बता दिया है कि इन दोनों समाजों का अन्तर मिटा सकना सहज नहीं। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमारा अन्तर्जीवन रिक्त। उस समाज में विकृतियाँ व्यक्तिगत हैं, पर सद्भाव सामूहिक रहते हैं। इसके विपरीत हमारी दुर्बलतायें समष्टिगत हैं पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।

ठकुरी बाबा अपने समाज के प्रतिनिधि हैं, इसीसे उनकी सहृदयता वैयक्तिक विचित्रता न होकर ग्रामीण जीवन में व्याप्त सहृदयता को व्यक्त करती है। हमारे समाज में उनकी दो ही स्थितियाँ सम्भव थीं। यदि उनमें दुर्बलताओं का प्राधान्य होता तो वे इस समाज का प्रतिनिधित्व करते और यदि शक्ति का प्राधान्य होता तो अपवाद की कोटि में आ जाते।

इधर दो वर्ष से ठकुरी बाबा माघ मेले में नहीं आ रहे हैं। कभी कभी

इच्छा होती है कि सैदपुर जाकर खोज करूँ, क्योंकि वहां से ३३ मील पर उनका गाँव है। उनके कुछ पद मैंने लिख रखे हैं जिन्हें मैं अन्य ग्रामगीतों के साथ प्रकाशित करने की इच्छा रखती हूँ। यदि ठकुरी बाबा से भेंट हो गई तो यह संग्रह और भी अच्छा हो सकेगा।

'यदि भेंट न हो' यह प्रश्न हृदय के किसी कोने में उठता है अवश्य पर मैं उसे आगे बढ़ने नहीं देती। ठकुरी बाबा जैसे व्यक्ति कहीं अपनी धरती का मोह छोड़ सकते हैं!

पिछली बार जब वे आये थे तब कुछ शिथिल जान पड़ते थे। हाथ दृढ़ता के साथ चिकारा थामता था पर उँगलियां तार के साथ कांपती थीं। पैर विश्वास के साथ पृथ्वी पर पड़ते थे पर पिंडलियो की थरथराहट गति को डगमग कर देती थी। कण्ठ में पहले जैसा ही लोच था पर कफ़ की घर्घराहट उसे बेसुरा बनाती रहती थी। आंखों में ममता का वही आलोक था पर समय ने अपनी छाया डाल कर उसे धुँधला कर दिया था। मुख पर वैसी ही उन्मुक्त हँसी का भाव था पर मानो धीरे धीरे साथ छोड़नेवाले दांतों को याद रखने के लिए ओठों ने अपने ऊपर स्मृति की रेखायें खींच लीं थी।

व्यक्ति समय के सामने कितना विवश है! समय को स्वीकृति देने के लिए भी शरीर को कितना मूल्य देना पड़ता है।

तब ठकुरी बाबा की मौसी विदा ले चुकी थीं। उनकी उपस्थिति ठकुरी बाबा के लिए इतनी स्वाभाविक हो गई थी कि अभाव की अस्वाभाविकता ने उन्हें एक दम चकित कर दिया होगा। एक बार भी उनके परिचय की सीमा में आ जानेवाला व्यक्ति ठकुरी बाबा का आत्मीय बन जाता है तब जो इतने वर्षों तक आत्मीय रहा हो उसके महत्व के सम्बन्ध में क्या कहा जावे! मौसी के अभाव ने ठकुरी बाबा के हृदय में एक और चिन्ता भी जगा दी हो

तो आश्चर्य नहीं। ऐसे ही एक दिन उनका अभाव बेला को सहना पड़ेगा और तब वह किस प्रकार जीवन की व्यवस्था करेगी यह सोचना स्वाभाविक कहा जायगा। पर वे अपनी चिन्ता को व्यक्त कम होने देते थे।

उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उत्तर मिला 'अब चलाचली कै बिरिया नियराय आई है बिटिया रानी! पाके पातन की भली चलाई। जौन दिन झरि जाँय तौन दिन सही'।

मैंने हँसी में कहा 'तुम स्वर्ग में कैसे रह सकोगे बाबा! वहाँ तो न कोई तुम्हारे कूट पद और उलटबाँसियाँ समझेगा और न आल्हाऊदल की कथा सुनेगा। स्वर्ग के गन्धर्व और अप्सराओं में तुम कुछ न जँचोगे।'

ठकुरी बाबा का मन प्रसन्न हो आया—कहने लगे 'सो तो हमहूँ जानित है बिटिया! हम उहाँ अस सोर मचाउब कि भगवान जी पुन धरती पै ढनकाय देहैं। हम फिर धान रोपब, कियारी बनाउब, चिकारा बजाउब औ तुम पचै का आल्हा-ऊदल कै कथा सुनाउब। सरग हमका ना चही, मुदा हम दूसर नवा सरीर माँगै बरे जाब जरूर। ई ससुर तौ बनाय कै जरजर हुइगा—' और वे गा उठे—

चलत प्रान काया काहे रोई राम।

उस कल्पवास की पुनरावृत्ति न हो सकी। सम्भव है वे नया शरीर माँगने चले गए हों। पर धरती से उनका प्रेम इतना सच्चा, जीवन से उनका सम्बन्ध ऐसा अटूट है कि उनका कहीं और रहना सम्भव ही नहीं जान पड़ता। अथर्व के जो गायक अपने आपको धरती का पुत्र कहते थे ठकुरी बाबा उन्हीं के सजातीय कहे जा सकते हैं। इनके लिए जीवन धरती का वरदान, काव्य उसके सौन्दर्य की अनुभूति, प्रेम उसके आकर्षण की गति और शक्ति उसकी प्रेरणा का नाम है। ऐसे व्यक्ति मुक्ति की ऊँची से ऊँची कल्पना को दूब में खिले नीचे से नीचे फूल पर न्यौछावर कर दें तो आश्चर्य नहीं।

ठकुरी बाबा की कथा लिखते-लिखते रात ढल गई—जाती हुई चाँदनी के पीछे आता हुआ प्रभात का धूमिल आभास ऐसा लगता है मानो उसी की छाया हो।

किसी अलक्ष्य महाकवि के प्रथम जागरण-छन्द के समान पक्षियों का कलरव नींद की निस्तब्धता पर फैल रहा है। रात की गहरी निस्पन्द नींद से जागे हुए वृक्षों के दीर्घ निश्वास के समान समीर बह रही है। और ऐसे समय में मेरी स्मृति ने मुझे भी किसी अतीतकाल के प्रभात में जगा दिया है। जान पड़ता है ठकुरी बाबा गंगा तट पर बैठ कर तन्मय भाव से प्रभाती गा रहे हैं—'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले।'

अपनी प्रभाती से वे किसे जगाते हैं, यह कहना कठिन है।